IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रेम की अवधारणा और रीतिकालीन नीतिकाव्य : एक विश्लेषण

डॉ (कैप्टन) विकास कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर
एस. जे. के. कॉलेज, कलानौर
एम. डी. यू. (रोहतक)
ई मेल : vikaskumar2974@gmail.com

हिंदी साहित्य के इतिहास में सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक के समय को सामान्यतः रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। श्रृंगार, अलंकरण आदि इस काल के काव्य की प्रमुख विशेषताएं रही हैं लेकिन नीतिकाव्य-परंपरा में इस युग के नीतिकाव्य का अपना एक विशिष्ट स्थान है। डॉ रामस्वरूप शास्त्री 'रसिकेश' इस युग के नीति-काव्य को आदिकाल और भक्ति काल से श्रेष्ठ मानते हैं। वे लिखते हैं कि – "जैसा कि हम देख चुके हैं, आदिकाल में हिंदी की एक भी काव्य-कृति ऐसी उपलब्ध नहीं होती जिसका एकमात्र या प्रधान विषय नीति हो। भक्तिकाल नि:संदेह आदिकाल की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उसमें तुलसीदास, देवीदास, बनारसीदास, रहीम, गंग आदि सुकवियों ने नीति-विषयक तथा नीति बहुल मौलिक और अनुवादात्मक रचनाएं प्रस्तुत कीं। परंतु रीतिकाल, अवधि की दृष्टि से भक्ति काल की अपेक्षा दो-तिहाई से कम होता हुआ भी नीतिकाव्य की दृष्टि से उसकी अपेक्षा बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।"[1]

डॉ 'रसिकेश' ने अपने कथन के प्रमाण में कुछ कारण[2] भी दिए हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :-

1. इस काल की कृतियों में ऐहिकता अधिक होना जो नीतिकाव्य की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।
2. रचनाएं संख्या में अधिक हैं और आकार में बड़ी हैं।
3. विषय अधिक व्यापक तथा विविधता पूर्ण हैं।
4. नीति पद्यों के संग्रह प्रस्तुत किए गए जिनका भक्ति काल में अभाव था।

अब समस्या यह आती है कि रीतिकाल के नीति-कवियों के अंतर्गत किन कवियों को रखा जाए? क्योंकि नीतिकाव्य तो बिहारी जैसे श्रृंगारी कवि ने भी खूब लिखा है। इसका उत्तर भी भोलानाथ तिवारी के इस कथन में ढूंढा जा सकता है कि - " बिहारी श्रृंगार के कवि हैं, नीति उनका प्रधान क्षेत्र नहीं है... ।[3]

स्पष्ट है कि रीतिकालीन नीति-कवि उस कवि को माना जा सकता है जिसके काव्य का प्रधान विषय नीति है और रीतिकालीन नीतिकाव्य से अभिप्राय उस काव्य से है जो विशुद्ध नीति की शिक्षा देने के लिए रचा गया है। इस दृष्टि से वृंद, गिरिधर, दीनदयाल, घाघ-भड्डरी के काव्य को ही रीतिकालीन नीतिकाव्य की संज्ञा से अभिहित करना समीचीन रहेगा। अतः प्रस्तुत शोध-पत्र में इन्हीं नीति-कवियों की विशुद्ध नीति-विषयक रचनाओं को ही अनुसंधान का विषय बनाया जाएगा। इन कवियों के नीतिकाव्य में प्रेम संबंधी अवधारणाओं का विवेचन-विश्लेषण करना ही इस शोध पत्र का उद्देश्य है। यद्यपि उससे पूर्व प्रेम शब्द के कोशगत अर्थों तथा अन्य विशेषताओं पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

बृहत हिंदी कोश के अनुसार प्रेम वह आकर्षण या सुखद मनोभाव है जिससे प्रभावित होकर एक व्यक्ति दूसरे को सदा अपने पास, साथ, निकट और प्रसन्न रखना चाहता है। इसी कोश के अनुसार प्रेम की उत्पत्ति गुण, रूप, स्वभाव आदि के कारण होती है।[4]

संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर में प्रेम को भाव मानते हुए किसी चीज या व्यक्ति को पाने, भोगने या सुरक्षित रखने की इच्छा से संबद्ध माना गया है। यह एक ऐसा पारस्परिक स्नेह है जो बहुत रूप, गुण अथवा कामवासना के कारण होता है।[5]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चिंतामणि (भाग एक) में प्रेम या प्रीति की विशेषताओं पर अत्यंत विस्तार से प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं कि – "प्रेम हिसाब-किताब की बात नहीं है। हिसाब-किताब करने वाले भाड़े पर मिल सकते हैं पर प्रेम करने वाले नहीं।" [6]

एकात्मकता प्रेम की बहुत बड़ी विशेषता है। शुक्ल जी के अनुसार – "प्रेमी प्रिय के जीवन को अपने जीवन में मिलाकर एक निराला मिश्रण तैयार करना चाहता है, वह दो से एक करना चाहता है। [7]

प्रेम में हर क्षण प्रिय के सामीप्य की चाह होती है। प्रेमी अपनी प्रियतम को हर समय अपने समक्ष ही रखना चाहता है। शुक्ल जी लिखते हैं कि – "....हम उसके दर्शन के लिए आकुल होंगे, उसे बराबर अपने सामने ही रखना चाहेंगे, तब प्रेम का सूत्रपात समझा जाएगा।[8]

एक सच्चे प्रेमी के लिए अपने प्रिय की साधारण से साधारण बात भी विशेष होती है। शुक्ल जी बताते हैं कि – "प्रेमी प्रिय के संपूर्ण जीवन-क्रम के सतत् साक्षात्कार का अभिलाषी होता है। वह उसका उठना, बैठना, चलना, फिरना, सोना, खाना, पीना, सब कुछ देखना चाहता है।[9]

प्रेम अत्यंत निर्मल और विशुद्ध रूप तभी धारण करता है जब उसमें से आत्मतुष्टि की भावना विरत हो जाती है और प्रिय के सुख की चाह के अतिरिक्त कोई चाह ही नहीं रह जाती। आचार्य शुक्ल आत्मतुष्टि रहित प्रेम को उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित करते हुए कहते हैं कि - "ऐसे प्रेम की अविचल प्रतिष्ठा अत्यंत उच्च भूमि पर होती है जहाँ सामान्य हृदयों की पहुंच नहीं हो सकती। इस उच्च भूमि पर पहुंचा हुआ प्रेमी प्रिय से कुछ भी नहीं चाहता, केवल यही चाहता है - प्रिय से नहीं, ईश्वर से - कि हमारा प्रिय बना रहे और हमें ऐसा ही प्रिय रहे।... ऐसे प्रेमी के लिए प्रिय की तुष्टि या सुख से अलग अपनी कोई तुष्टि या सुख रह ही नहीं जाता। प्रिय का सुख-संतोष ही उसका सुख-संतोष हो जाता है।[10]

आचार्यवर ने रूप-गुण से उत्पन्न हुए प्रेम के साथ साहचर्य को भी प्रेम की उत्पत्ति का कारण माना है और साहचर्य से उत्पन्न प्रेम के अंतर्गत देश-प्रेम, पिता-पुत्र, भाई-बहन, इष्ट-मित्र से लेकर चिर-परिचित पशु-पक्षी और वृक्ष तक को रखा है। प्रेमी और प्रियतम के मध्य का प्रेम भी आगे चलकर साहचर्य-जन्य-स्वरूप धारण कर लेता है - ऐसा भी शुक्ल जी ने कहा है।[11]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने प्रेम की विलक्षणता और अद्भुतता की भी चर्चा की है। वे लिखते हैं कि यही एक ऐसा भाव है ...जिसके व्यंजक दीर्घ नि:श्वास और अश्रु भी होते हैं तथा हर्ष पुलक और उछल-कूद भी। साहित्य के आचार्यों ने इसी से श्रृंगार के दो पक्ष कर दिए हैं - संयोग पक्ष और वियोग पक्ष। कोई और भाव ऐसा नहीं है जो आलंबन के रहने पर तो एक प्रकार की मनोवृत्तियां और चेष्टाएं उत्पन्न करें और न रहने पर बिल्कुल दूसरे प्रकार की।..... ।..... प्रेम के शासन का यही दीर्घ विस्तार देखकर लोगों ने श्रृंगार को रसराज कहा है। [12]

डॉ विनोदिनी श्रीवास्तव का मानना है कि प्रेम की कोई एक परिभाषा देना या किसी एक परिधि में बांधना अत्यंत कठिन है। उनका मत है कि – "वास्तव में प्रेम को परिभाषित करना उतना ही कलिष्ट है जितना जीवन को परिभाषा की परिधि में बांधना क्योंकि जीवन जितना वैविध्यपूर्ण और दुर्बोध है, प्रेम भी उतना ही व्यापक एवं गंभीर है। जीवन के प्रथम उन्मेष के साथ ही प्रेम का उद्भव हो गया था।[13]

डॉ रामेश्वर दयाल खंडेलवाल जी को उद्धृत करते हुए विनोदिनी जी ने प्रेम के विविध रूप यथा दांपत्य-प्रेम, वात्सल्य-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, मानव-प्रेम, देश-प्रेम, श्रद्धा-भक्ति आदि बताए हैं।[14]

प्रेम के अवधारणात्मक स्वरूप को स्पष्ट करने में श्री प्रभाकर श्रोत्रिय जी की परिभाषा अत्यंत महत्वपूर्ण जान पड़ती है, जिन्होंने प्रेम की लगभग सभी विशेषताओं को अपने कथन से स्पष्ट सा कर दिया है। वे लिखते है कि – "प्रेम, एक ऐसा अत्यन्त सशक्त, गुंफित, अनादि एवं चराचर व्यापी भाव है, या एक ऐसा बोध है, जो व्यक्ति के भीतर सराहना और आनन्द का कारण होता है, जो किसी के सामीप्य, साहचर्य और एकात्मता की कामना रखता है ; अनन्यता, अनुकूल – वेदनीयता, परार्थपरता और त्याग की भावना से युक्त होता है, किसी पर अधिकार की चाह, कृपा तथा उसकी सुख-समृद्धि की इच्छा करता है और हर तरह के खतरे झेलकर भी उसमें सहायक होता है। तृप्ति की इच्छा और आवश्यकता से उत्पन्न यह एक ऐसा समर्पण मय राग है जो अहम्

और काम से आरम्भ होकर निरहंकारिता और निष्काम समर्पण की पराकाष्ठा पर पहुंचता है तथा व्यक्ति की सीमाओं से निकलकर सम्पूर्ण सृष्टि की सीमाओं में बिखर जाता है। इसका प्रसार मनुष्य के सम्पूर्ण कर्तृत्व में हो जाता है।[15]

प्रेम की अवधारणा से संबंधित उपर्युक्त विवेचन पश्चात यह माना जा सकता है कि प्रेम एक भाव है जो किसी के निरंतर सामीप्य की चाह , समर्पण, अनन्यता , एकात्मकता, प्रिय के हृदय पर अधिकार की इच्छा और त्याग की भावना से युक्त होता है। इसका प्रारंभ बहुधा रूप, गुण, कामना से होता है परंतु जब यह नि:स्वार्थता और समर्पण में परिणित होता है तो लौकिक होकर भी अलौकिक हो जाता है। प्रेम की महानता को कबीर दास जी ने इस प्रकार वर्णित किया है -

पढ़ि पढ़ि के पत्थर भया, लिखि-लिखि भया जु ईंट।
कहे कबीर प्रेम की, लगी न एको छींट ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोई।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होई।।[16]

वस्तुत : प्रेम जब कामना और तुष्टि की सीमा से निकलकर निश्चलता, समर्पण और त्याग की सीमा तक पहुंचता है तो महान हो जाता है। प्रेम के विभिन्न रूप यथा दांपत्य-प्रेम, वात्सल्य-प्रेम, भक्ति-प्रेम, मित्र-प्रेम, देश-प्रेम, मानव-प्रेम और ईश्वरीय-प्रेम आदि हो सकते हैं। अब हम रीतिकालीन नीति-कवियों के नीतिकाव्य में प्रेम संबंधी अवधारणाओं का विश्लेषण करते हैं।

जैसाकि प्रेम के अर्थ व विशेषताओं पर विचार करते हुए चर्चा की गई है कि प्रेम का स्वाभाविक गुण है – समीपता की चाह । लेकिन किसी को अपने प्रियतम से अलग रहना पड़े तो उसकी स्थिति की कल्पना ही की जा सकती है । गिरिधर ने प्रिय से बिछुड़ी विरहिणी के बारे में कहा है कि -

मोती लावन पिव गए, धुर पटना गुजरात
मोती मिले, न पिव मिले, युग भरि बीती बात
....
कह गिरिधर कविराय, गोपिका यह कह रोती
आगि लगै वह देस, जहाँ उपजत है मोती । [17]

अर्थात् प्रियतम के वियोग में नायिका की एक-एक रात एक युग के समान बीतती है। विरह में डूबी वह नायिका चाहती है कि उस देश को ही आग लग जाए जहाँ मोती होते हैं। न मोतियों का लालच होगा और न प्रिय उसे छोड़कर जाएंगे।

वियोग की पीड़ा दीनदयाल जी ने भी कही है। वे लिखते हैं कि –
बरनै दीनदयाल नहीं जिन प्रेम किये पल।
ते किमि जानै पीर वियोगीजन की हे जल।। [18]

प्रेम की विलक्षणता वृन्द कवि इस प्रकार समझाते हैं -
प्रेम नेम के पंथ को है कछु अद्भुत रूप ।
पिय हिय लागै लगत ज्यौं सरद जोन्ह सी धूप ।।[19]
प्रेम का मार्ग कुछ अद्भुत ही है। पति के हृदय को लगी स्त्री को धूप भी शरद ऋतु की चाँदनी जैसी शीतल लगती है। इसके विपरीत जब कहीं प्रिय से वियोग हो जाए तो शीतल चाँदनी देने वाला चंद्रमा भी कलंकी, विष से भरा हुआ और ताप देने वाला हो जाता है। दृष्टव्य है –
तपत कलंकी बिस भरयो बिरहिन ससिहि कहादि ।।[20]
और
ससि शीतल संयोग में तपत बिरह की बेर ।।[21]

प्रेम गहराइयों में डूबने का नाम है। सच्चे प्रेम का असर बड़ा गहरा होता है और यह विष की भांति रोम रोम में समा जाता है। वृन्द लिखते हैं कि –

प्रेम पगत बरजी न क्यों अब बरजत बेकाज।

रोम-रोम बिस रमि रह्यो नाहिन बनत इलाज ।।[22]

अर्थात् जब प्रेम में डूब रहे थे (प्रारम्भ) तब तो मना नहीं किया, अब पीछे हटने से क्या लाभ? जब रोम-रोम में प्रेम रूपी विष चला ही गया तो इलाज करने से क्या मिलने वाला है?

वृंद अन्यत्र लिखते है कि –

जैसो बंधन प्रेम कौ तैसो बंधन न और।

काठहि भेदै कमल को छेद न निकरै भौंर ।।[23]

अर्थात् प्रेम जैसा बंधन कोई दूसरा नहीं है। तभी तो भौंरा काठ को छेद देता है, कमल को नहीं।

प्रेम करने वाले किसी से डरते नहीं हैं। क्या भौंरा तीखे कांटे जानकर भी केवड़े के फल को छोड़ देता है -

डरै न कबहूँ दुष्ट सौ, जाहि प्रेम की बान।

भौंर न छाड़ केतकी तीखे कंटक जान ।।[24]

सच्चे प्रेम में प्रतिज्ञा और एकटूटता होती है। पेट में पड़ी मछली मर जाने पर भी पानी चाहती है।

प्रेमी प्रीत न छांड़ही होत न प्रान तें हीन।

मरे पड़े हू उदर मैं ज्यों जल चाहत मीन।।[25]

प्रेम का एक गुण अपने प्रिय की अच्छाइयों को देखना है। तभी वृन्द कहते हैं कि -

रागी अबगुन ना गनै यहै जगत की चाल।

देखौ सबही स्याम को कहत बाल सब लाल ।।[26]

अर्थात् प्रेम करने वाले अवगुण नहीं देखा करते। काले श्याम को सभी ‘लाल’ कहकर पुकारते हैं।

प्रेम के रास्ते में कोई शासक नहीं है। तीनों लोको के स्वामी भगवान श्रीकृष्ण प्रेम के वश होकर ही गोपियों के पीछे-पीछे जंगलों में फिरते हैं -

अगम पंथ है प्रेम को जहं ठकुराई नाहिं।

गोपिन के पीछे फिरे त्रिभुवन पति बन माहिं ।।[27]

प्रेम चुम्बक की तरह प्रबल आकर्षण का नाम है। जिससे मोह हो उससे अलग नहीं हुआ जाता। जड़ लोहा तक चुम्बक के पीछे पीछे लगा घूमता है।

जे चेतन ते क्यौं तजैं जाकौं जासौ मोह।
चुंबक के पीछे लाग्यौं फिरत अचेतन लोह ।।[28]

बैताल दाम्पत्य प्रेम की महिमा का प्रकट करते हुए कहते हैं कि -

हरि नाम भजन बिनु संत अरू घटा सून बिन दामिनी।

बैताल कहै विक्रम सुनो पति बिनु सूनि कामिनी ।।[29]

अर्थात् हरि के नाम बिना संत, बिजली बिना बादल और पति के बिना पत्नी अधूरी है। कवि ने यहाँ पर पति-पत्नी के आपसी संबंध को, मान-मनुहार को, लड़ाई-प्यार को, संयोग-वियोग को चित्रित-सा कर दिया है।

तुलना करे -

उनकौ हितु उनहीं बनै, कोऊ करै अनेकु।

फिरतु काग –गोलकु भयौ, दुहूँ देह ज्यौं एकु ।।[30]

अर्थात् दाम्पत्य प्रेम तो ऐसा होता है कि उन्हीं (पति-पत्नी) से ही होते बनता है। दोनों के शरीर तो दो हैं पर जीव एक ही है। जैसे कौवे के दोनों गोलकों में एक ही नेत्र होता है।

लेकिन विचार का विषय यह भी है कि रीतिकालीन नीतिकाव्य में प्रेम की राह बहुत कठिन बताई गई है। कवि दीनदयाल प्रेम पंचक सवैया में बताते है कि – प्रेम अत्यंत मृदुल है , कोमल है परन्तु अंत तक उसको निभाना बहुत कठिन है। ध्यातव्य है -

हित दीनदयाल महामृदु है कठिनै अति अंत निबाहनो है।[31]

कवि के प्रेम पंचक सवैयों का सार यह है कि इस मार्ग में संकट की हवा, वियोग की लू, दु:खो की दावाग्नि, शोक की नदी और विषाद के भयंकर घड़ियाल का सामना करना पड़ता है। प्रेम पानी के बुलबुलों का बिस्तर बनाकर उस पर हाथी को सुलाना है और मकड़ी के जाल में सिंह को फँसाना है। इसी प्रकार साँप की जीभ पकड़ लेना, पहाड़ से कूद पड़ना आदि आसान है पर प्रेम निभाना कठिन। प्रेम के रास्ते में कलंक रूपी कीचड़ में डूब कर नहाना पड़ता है। यहाँ तक कि मौत से बैर एक बार निभाया जा सकता है पर प्रेम को अंत तक निभाना अत्यंत कठिन है।[32]

इस काव्य में अलौकिक प्रेम की चर्चा भी हुई है। गिरिधर कवि कहते हैं कि यारी करनी है तो उस यार से करो जो व्यापक है। वह यार सुख-दुःख, विपत्ति में भी एक पल साथ नहीं छोड़ता। द्रष्टव्य है-

यारी ता संग कीजिए, गहै हाथ सो हाथ

दुःख-सुख संपति विपत्ति में, छिन भरे तजै न साथ

....

कह गिरिधर कविराय निमक में ज्यों रस खारी

या प्रकार जो व्यापक ता संग लइये यारी [33]

यह नीतिकाव्य मित्र-प्रेम की भी अभिव्यंजना करता है। मित्र से बिछोह सावन के मेघो की तरह आँखों से वर्षा करवाता है।

गिरिधर लिखते है कि –

मित्र बिछोह अति कठिन, मत दीजे करतार

वाके गुण जब अति चढ़े, वर्षत नयन अपार [34]

गिरिधर का यह मानना है कि दो सच्चे मित्रों की यारी में उनके सुख-दुःख भी समान हो जाते है। द्रष्टव्य है-

कहे गिरिधर कविराय एक रस बात करारी

एकै दुःख सुख एक दुहु चतुरन की यारी [35]

इसी प्रकार वृन्द ने माना है कि एक मित्र अपने मित्र के लिए अपनी सम्पति तक दे देता है । जैसे चंद्रमा भी अपना प्रकाश सूर्य मंडल से लेता है ।[36]

कुल मिलाकर निष्कर्ष तुला पर कहा जा सकता है कि रीतिकालीन नीतिकाव्य दाम्पत्य प्रेम का वर्णन करते समय उसके आधारभूत तत्वों (प्रिय का सामीप्य, प्रिय के बिना जीवन की निस्सारता) आदि की चर्चा करता है तो प्रेम की गहराइयों में डूब जाने की बात भी कहता है। यह काव्य सच्चे प्रेम की डगर बड़ी कठिन बताता है तो प्रेम के अनूठे भाव (पति के सीने से लगी स्त्री को धूप भी शीतल लगती है) का वर्णन भी करता है। जग प्रसिद्ध फिल्मी गीत 'प्यार करने वाले कभी डरते नहीं' वाला भाव बरसों पहले डरै न कबहूँ दुष्ट सौ जाहि प्रेम की बान' जैसी उक्तियों में ढूँढा जा सकता है। इस काव्य के अनुसार प्रेम का मार्ग ही अद्भुत है तभी त्रिभुवन स्वामी कृष्ण भी गोपियों के पीछे-पीछे जंगल में फिरते रहे। अलौकिक-प्रेम और मित्र-प्रेम की चर्चा भी इस काव्य में हुई है। वस्तुतः यह नीतिकाव्य अत्यत सादगी से सच्चे प्रेम के शाश्वत गुणों की अभिव्यंजना और प्रतिष्ठा करता है।

संदर्भ :

---

[1] शास्त्री, राम स्वरूप, हिंदी में नीति-काव्य का विकास, नई दिल्ली, दिल्ली पुस्तक सदन, 1962 , पृ. 457.
[2] वही, पृ 457
[3] तिवारी, भोलानाथ, हिंदी नीति-काव्यधारा इलाहाबाद, किताब महल, प्रथम संस्करण, 1984, पृ 72.
[4] प्रसाद; सहाय; श्रीवास्तव, कलिका; राजबल्ल्भ; मुकुन्दीलाल (संपा.) बृहत हिंदी कोश, वाराणसी, ज्ञान मंडल लि., पुनर्मुद्रित, 2012. पृ 760 .
[5] त्रिपाठी , करुणाशंकर (नव संपा, संयोजक), संक्षिप्त हिंदी शब्द सागर, वाराणसी नगरी प्रचारणी सभा, त्रयोदश संस्करण, सवंत 2061 वि., पृ 667.
[6] शुक्ल, रामचन्द्र, चिंतामणि (पहला भाग), प्रयाग, इन्डियन प्रेस लि.1948 पृ 76-77
[7] वही, पृ 19
[8] वही, पृ 20
[9] वही, पृ 19
[10] वही, पृ 94
[11] वही, पृ 95
[12] वही, पृ 96
[13] श्रीवास्तव,विनोदिनी, निराला साहित्य में जीवन-दर्शन, लखनऊ , सुलभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1988, पृ 93.
[14] वही, पृ 93
[15] श्रोत्रिय, प्रभाकर, प्रसाद का साहित्य ; प्रेम तात्विक दृष्टि, दिल्ली,आत्माराम एंड संस, 1975, पृ 13
[16] द्विवेदी, हजारी प्रसाद,कबीर,दिल्ली,राजकमल प्रकाशन, सांतवीं आवृति, 1999 पृ 145.
[17] गुप्त, किशोरी लाल (संपा.) गिरिधर कविराय ग्रन्थावली (कुंडलियाँ) इलाहाबाद, मधु प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1977, पृ. 9.
[18] गौड़, रामदास (संपा.) अन्योक्ति कल्पद्रुम, प्रयाग, साहित्य भवन लि. द्वितीय संस्करण संवत, 1988, पृ.17
[19] चेलेर, जनार्दनराव (संपा.), वृन्द- ग्रंथावली, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, 1971, पृ 87 .
[20] वही, पृ 61
[21] वही, पृ 61
[22] वही, पृ 64
[23] वही, पृ 66
[24] वही, पृ 75
[25] वही, पृ 92
[26] वही, पृ 58
[27] वही, पृ 103
[28] वही, पृ 68
[29] तिवारी, भोलानाथ, हिंदी नीति-काव्यधारा इलाहाबाद, किताब महल, प्रथम संस्करण, 1984, पृ62
[30] रत्नाकर,जगन्नाथ दास (प्रणेता), बिहारी रत्नाकर, जयपुर, साहित्यगार, संस्करण 2000, पृ 187
[31] गौड़, रामदास (संपा.) अन्योक्ति कल्पद्रुम, प्रयाग, साहित्य भवन लि. द्वितीय संस्करण, संवत 1988, पृ.137

[32] वही, पृ 137 – 139.
[33] गुप्त, किशोरी लाल (संपा.) गिरिधर कविराय ग्रंथावली (कुंडलियाँ) इलाहाबाद, मधु प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1977, पृ. 49
[34] वही, पृ 11
[35] वही, पृ 134
[36] चेलेर, जनार्दनराव (संपा.), वृन्द ग्रंथावली, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, 1971, पृ.108.

International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation